वैदिक काल में एकेश्वरवाद और बहुदेववाद

[1] सोनिया देवी, [2]डॉ. प्रशांत सिंह
[1]शोधार्थी, [2]पर्यवेक्षक
विभागः प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,, प्रो० राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

सार
वैदिक काल (1500–500ई.पू.) भारतीय धार्मिक चिंतन का प्रारंभिक चरण था, जिसमें धार्मिक विचारों का क्रमिक विकास हुआ। इस युग में एक ओर अनेक देवताओं की पूजा के रूप में बहुदेववाद प्रमुख था, तो दूसरी ओर एक सर्वोच्च सत्ता की खोज से एकेश्वरवाद की भी झलक मिलती है। ऋग्वेद में इंद्र, अग्नि, वरुण जैसे देवता तो पूजनीय हैं, पर *''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति''* जैसी ऋचाएँ एक ही सत्य को विविध रूपों में मानने की प्रवृत्ति दर्शाती हैं। हिरण्यगर्भ और नासदीय सूक्तों में ब्रह्म की अमूर्त अवधारणा मिलती है, जो उपनिषदों में विकसित एकेश्वरवाद का आधार बनती है। वहीं, बहुदेववाद समाज की विविधता और आस्था को संगठित करता है, जिसमें प्रत्येक देवता एक विशेष कार्य से जुड़ा है। इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच हेनोटेइज़्म के माध्यम से सामंजस्य स्थापित हुआ, जिसमें एक देव को सर्वोपरि मानते हुए भी अन्य देवताओं का सम्मान बना रहा। इस प्रकार वैदिक धर्म में एकता और विविधता का अद्वितीय संगम मिलता है।
मुख्य शब्दः वैदिक काल, एकेश्वरवाद, बहुदेववाद, ऋग्वेद, हिरण्यगर्भ सूक्त, नासदीय सूक्त, उपनिषद, हेनोटेइज़्म, ब्रह्म, इंद्र, अग्नि, वरुण, ''एकं सद्विप्रा'', धार्मिक विकास, सामाजिक संरचना।

1. प्रस्तावना

वैदिक काल (लगभग 1500 से 500 ईसा पूर्व) भारतीय उपमहाद्वीप के बौद्धिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विकास का प्रारंभिक और अत्यंत महत्वपूर्ण युग था। यह वह समय था जब आर्य सभ्यता का प्रसार हुआ और जीवन के प्रत्येक पक्ष को व्यवस्थित करने वाले वैदिक ग्रंथों की रचना हुई। इस काल की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें धर्म और दर्शन के बीज रूपों का निर्माण हुआ। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जैसे ग्रंथों में न केवल यज्ञ, मंत्र और देवताओं का उल्लेख मिलता है, बल्कि प्रकृति, ब्रह्मांड, जीवन–मरण और ईश्वर संबंधी चिंतन का भी गहन चित्रण मिलता है। वैदिक काल का समाज जनपदों में संगठित था, जहां धार्मिक अनुष्ठान, प्रकृति के प्रति श्रद्धा और देवताओं की पूजा दैनिक जीवन का अभिन्न अंग थी। यह धार्मिक चेतना धीरे–धीरे दार्शनिक गहराई की ओर बढ़ी, जिससे भारतीय धार्मिकता की नींव पड़ी।

धार्मिक दृष्टिकोण से यह युग अत्यंत जटिल और बहुआयामी था। एक ओर बहुदेववाद की परंपरा थी, जहाँ इंद्र, अग्नि, वरुण, सोम, मरुत जैसे अनेक देवताओं की पूजा की जाती थी। ये सभी देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक थे और उनका कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से विभाजित था, जैसे अग्नि यज्ञ का देवता था, वरुण नैतिकता और ऋत का संरक्षक था, और इंद्र युद्ध और वर्षा का स्वामी था। दूसरी ओर, वैदिक ग्रंथों में बार–बार एक ऐसी सर्वोच्च सत्ता की ओर संकेत मिलता है जो समस्त सृष्टि के मूल में है, जो न तो किसी एक रूप में सीमित है और न ही अनेक रूपों में पूरी तरह प्रकट हो सकती है। इस अवधारणा को स्पष्ट रूप से दर्शाने वाली ऋग्वेद की एक प्रसिद्ध ऋचा हैः *''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।''* (ऋग्वेद 1.164.46) जिसका अर्थ है, सत्य एक ही है, ज्ञानीजन उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। यह कथन वैदिक एकेश्वरवाद की जड़ें प्रकट करता है, जिसमें विभिन्न देवताओं के पीछे एक ही परम तत्व की कल्पना की गई है।

इस प्रकार वैदिक काल में एक ओर जहाँ बहुदेववाद के रूप में अनेक देवताओं की उपासना प्रचलित थी, वहीं दूसरी ओर एकेश्वरवाद की भी नींव रखी जा रही थी, जिसमें एक निराकार, सर्वशक्तिमान सत्ता की कल्पना उभर रही थी। इस द्वैत को समझना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह केवल पूजा–पद्धति की विविधता नहीं दर्शाता, बल्कि धार्मिक चेतना की परिपक्वता और गहराई को भी उजागर करता है। उदाहरण के लिए, *ऋग्वेद की प्रारंभिक ऋचा–''अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।''* (ऋग्वेद 1.1.1)–में अग्नि को देवताओं के पुरोहित के रूप में स्तुत किया गया है, जो बहुदेववाद की एक सशक्त अभिव्यक्ति है। किंतु यही ग्रंथ जब

हिरण्यगर्भ और नासदीय सूक्तों में ब्रह्मांड की उत्पत्ति और उस परम सत्ता की चर्चा करता है, तो वह एकेश्वरवाद के दर्शन की ओर संकेत करता है। इस प्रकार, वैदिक धर्म में एकेश्वरवाद और बहुदेववाद विरोधी धाराएँ नहीं थीं, बल्कि वे एक ही विचार–सरणि के दो पूरक पहलू थे, जो भारतीय धार्मिक परंपरा को संतुलन और गहराई प्रदान करते हैं।

2. ऋग्वेद में धार्मिक दृष्टिकोणः

ऋग्वेद, जो कि सबसे प्राचीन वैदिक ग्रंथ है, वैदिक धर्म के धार्मिक चिंतन और देवताओं की पूजा–पद्धति का मुख्य आधार रहा है। इसमें लगभग 1028 सूक्त हैं, जिनमें प्रकृति, जीवन, यज्ञ, और ईश्वर के बारे में विविध दृष्टिकोण मिलते हैं। ऋग्वेद के धार्मिक स्वरूप की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें एक ही समय पर बहुदेववाद और एकेश्वरवाद दोनों की उपस्थिति दिखाई देती है। अनेक देवताओं की स्तुति की गई है, किंतु कहीं–कहीं एक परम सत्ता की अवधारणा भी प्रकट होती है। यह मिश्रण वैदिक युग की धार्मिक दृष्टि को बहुआयामी और गहन बनाता है।

ऋग्वेद में जिन प्रमुख देवताओं की पूजा की गई है, उनमें इंद्र, अग्नि, वरुण, सोम, मरुत, सविता और उषस् शामिल हैं। इंद्र को सबसे शक्तिशाली और युद्ध में विजय दिलाने वाला देवता माना गया है, उसकी स्तुति ऋग्वेद में सबसे अधिक बार की गई है। अग्नि को यज्ञ का देवता और देवताओं तक मनुष्यों के संदेश पहुंचाने वाला माध्यम माना गया है। उसकी पूजा सभी वैदिक अनुष्ठानों का प्रमुख अंग थी। वरुण को नैतिकता, ऋत और व्रत का संरक्षक माना गया। सोम एक पेय और देवता दोनों रूपों में पूज्य था, जिसे देवता अमरत्व देने वाला मानते थे। इन देवताओं की पूजा विभिन्न उद्देश्यों और प्रयोजनों से की जाती थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में बहुदेववाद एक व्यावहारिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी जरूरी था।

हालाँकि ऋग्वेद में अनेक देवताओं की स्तुति है, लेकिन कई सूक्त ऐसे भी हैं जो एकेश्वरवाद की ओर संकेत करते हैं। इन सूक्तों में ऐसा प्रतीत होता है कि सभी देवताओं के पीछे कोई एक परम सत्ता है, जो अदृश्य, निराकार और सर्वव्यापक है। ऋग्वेद की एक प्रसिद्ध ऋचा कहती हैः *''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।''* (ऋग्वेद 1.164.46)– सत्य एक है, किंतु ज्ञानीजन उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं–जैसे अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि। यह स्पष्ट करता है कि देवताओं की बहुलता केवल नामों और रूपों की है, मूल तत्व एक ही है।

एक और गहन विचार *"एकोऽहम् बहुस्याम।"* से प्रकट होता है, जिसका अर्थ हैः ''मैं एक था, बहुत होने की इच्छा की।'' यह ब्रह्मांड की उत्पत्ति को एक परम सत्ता की इच्छा से जोड़ता है, जो स्पष्ट रूप से एकेश्वरवादी अवधारणा है। इस प्रकार के विचार ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ और नासदीय सूक्तों में और गहराई से प्रकट होते हैं, जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति से पहले की शून्यता और उस शाश्वत सत्ता का वर्णन किया गया है, जो सबका मूल है।

इस प्रकार, ऋग्वेद में धार्मिक दृष्टिकोण किसी एक मत तक सीमित नहीं है। यह न तो केवल बहुदेववादी है और न ही पूर्णतः एकेश्वरवादी, बल्कि यह एक ऐसी धार्मिक दृष्टि प्रस्तुत करता है, जिसमें विविधता और एकता दोनों का सह–अस्तित्व है। यही वह विशेषता है, जो वैदिक धर्म को अत्यंत लचीला, सहिष्णु और दार्शनिक रूप से समृद्ध बनाती है।

3. एकेश्वरवाद की झलक

3.1 हिरण्यगर्भ और नासदीय सूक्तः एकेश्वर की प्रारंभिक अवधारणा

ऋग्वेद के उत्तर मंडल (अंतिम भाग) में जब ऋषियों का चिंतन केवल प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति से आगे बढ़कर सृष्टि के आदि स्रोत की ओर मुड़ता है, तब हमें एकेश्वरवाद की पहली दार्शनिक झलक मिलती है। दो विशेष सूक्त– हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋग्वेद 10.121) और नासदीय सूक्त (ऋग्वेद 10.129) – इस दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

हिरण्यगर्भ सूक्त में उस एकमात्र सत्ता का वर्णन है जो समस्त सृष्टि से पहले भी अस्तित्व में थी। ऋषि इस सत्ता को सृष्टि का मूल मानते हैं, जो स्वयं में पूर्ण है और जिसे किसी अन्य के सहयोग की आवश्यकता नहीं है।

''हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत।''

(ऋग्वेद 10.121.1)

''सृष्टि से पूर्व हिरण्यगर्भ ही विद्यमान था, वही समस्त जीवों का स्वामी बना।''
यहाँ "पतिरेक आसीत" (वह एकमात्र स्वामी था) विशेष रूप से यह स्पष्ट करता है कि यह सत्ता न केवल प्रथम थी, बल्कि एकमात्र शाश्वत सत्ता भी थी, जिससे अन्य सभी अस्तित्वों की उत्पत्ति हुई। यह विचार तत्कालीन बहुदेववाद के पार जाकर एक केंद्रीय सत्ता की संकल्पना को सामने लाता है।
नासदीय सूक्त, दूसरी ओर, दर्शन और आत्मचिंतन की चरम ऊँचाई पर पहुँचता है। यह सूक्त न केवल एक सर्वोच्च सत्ता की खोज करता है, बल्कि वह उस स्थिति की कल्पना करता है जब न अस्तित्व था, न अनस्तित्व। यहाँ ''तत'' की धारणा प्रस्तुत की गई है– एक ऐसी सत्ता जो रूपरहित है, परंतु जिसमें समस्त संभावनाएँ निहित हैं।
''तदेकं अवातं अन्वासीत् तदेकं।''
(ऋग्वेद 10.129.2)
''वह एक ही था, जो श्वास भी बिना, अपनी शक्ति से अस्तित्व में था।''
यहाँ "अवातं" यानी वायु रहित और ''स्वधा'' यानी अपनी स्वशक्ति से स्वयं अस्तित्व में रहना, यह दर्शाता है कि वह परम सत्ता किसी बाहरी शक्ति पर निर्भर नहीं थी। यह चिंतन एकेश्वरवाद की उस गहराई को दर्शाता है, जो ऋग्वैदिक युग में ही अंकुरित हो चुकी थी।

ब्रह्म की अमूर्त और निराकार कल्पना

ऋग्वेद में उपास्य देवताओं के स्वरूप भले ही मानव जैसे हों, परंतु धीरे–धीरे चिंतन का रुख एक निराकार सत्ता की ओर बढ़ता है। एक ऐसी सत्ता, जो इंद्र या अग्नि जैसे किसी विशिष्ट देवता की सीमा में नहीं बंधी, बल्कि जो समस्त नामों और रूपों से परे है। इस सत्ता को बाद में ब्रह्म के रूप में पहचाना गया– एक ऐसा तत्त्व जो न देखा जा सकता है, न सुना, और न ही वर्णित। उसे केवल अनुभूत किया जा सकता है।
यह अमूर्त ब्रह्म किसी विशेष स्थान, मूर्ति या स्वरूप में सीमित नहीं है। वह व्यापक है, निर्गुण है, और आत्मा के भीतर भी उसी प्रकार विद्यमान है जैसे समस्त ब्रह्मांड में। यह चिंतन उस धार्मिकता को जन्म देता है जिसमें पूजा केवल कर्मकांड नहीं बल्कि एक आत्मिक अनुभूति बन जाती है। इस अनुभूति के लिए यज्ञ या मंत्र आवश्यक नहीं, बल्कि आत्म–चिंतन और आत्मा के भीतर उस सत्ता को पहचानना आवश्यक है।

उपनिषदों में एकेश्वरवाद का विकास

वैदिक साहित्य का अंतिम चरण– उपनिषद– एकेश्वरवाद को सर्वाधिक सुस्पष्ट और गूढ़ रूप में सामने लाता है। यहाँ अब बहुदेववाद पीछे छूटता है, और सारा ध्यान 'ब्रह्म' नामक निराकार, अविनाशी सत्ता पर केंद्रित हो जाता है। उपनिषद ब्रह्म को ही परम सत्य और जगत का कारण मानते हैं।
''सर्वं खल्विदं ब्रह्म।''
(छांदोग्य उपनिषद 3.14.1)
''यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म ही है।''
यह कथन सिर्फ एक दार्शनिक मत नहीं है, यह आध्यात्मिक अनुभव की घोषणा है कि संसार का हर अंश उसी एक सत्ता का विस्तार है। यहाँ केवल ईश्वर की उपासना नहीं, बल्कि आत्मा और ब्रह्म की एकता को स्वीकार किया गया है।
''अहं ब्रह्मास्मि'' (मैं ही ब्रह्म हूँ)
–बृहदारण्यक उपनिषद
''तत्त्वमसि'' (तू वही है)
–छांदोग्य उपनिषद
ये महावाक्य केवल ज्ञानसूत्र नहीं, बल्कि आध्यात्मिक पहचान के उद्घोष हैं। उपनिषदों में ईश्वर कहीं बाहर नहीं है, वह स्वयं 'मैं' में है, आत्मा में है– यही एकेश्वरवाद का पूर्णतम रूप है।
ऋग्वेद की सूक्तियों से लेकर उपनिषदों तक, भारतीय धार्मिक चिंतन निरंतर एक रूपांतरशील यात्रा पर रहा– प्राकृतिक शक्तियों की पूजा से एक अद्वितीय सत्ता की खोज तक। हिरण्यगर्भ और नासदीय जैसे सूक्तों में सृष्टिकर्ता की खोज और एकात्मा की चेतना इस बात का प्रमाण हैं कि वैदिक ऋषियों का ध्यान केवल बाहरी पूजा पर नहीं, बल्कि एक आंतरिक परम तत्व की अनुभूति पर केंद्रित था। एकेश्वरवाद वैदिक धर्म की अंतिम परिणति नहीं, बल्कि उसका मूल आधार था, जो आगे चलकर उपनिषदों में पूर्ण दर्शन बनकर प्रकट हुआ।

यह न केवल धार्मिक विकास है, बल्कि भारतीय चिंतन की मौलिक पहचान भी है।

4. बहुदेववाद का विस्तार और सामाजिक कार्य

देवताओं का कार्य–विभाजनः धार्मिक व्यवस्था में कार्यशीलता

ऋग्वेदिक समाज में बहुदेववाद केवल धार्मिक विश्वास की बहुलता नहीं था, बल्कि यह समाज की संरचना, प्रकृति की समझ और दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के साथ गहराई से जुड़ा हुआ था। देवताओं को अलग–अलग कार्यक्षेत्र सौंपे गए थे। इससे न केवल धार्मिक व्यवस्था में स्पष्टता आई, बल्कि लोगों के आचरण और कर्तव्यों को भी धार्मिक आधार मिला।

अग्नि को यज्ञ और अग्निहोत्र से जोड़ा गया, जहाँ वह देवताओं और मनुष्यों के बीच संदेशवाहक की भूमिका निभाता है। अग्नि को ''पुरोहित'' कहा गया– यज्ञ का आरंभ अग्नि की स्तुति से ही होता है।

''अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।'' (ऋग्वेद 1.1.1)

''मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ, जो यज्ञ का पुरोहित और देवताओं का ऋत्विज है।''

वरुण, ऋत का देवता, धर्म और नैतिकता का प्रतीक था। वह पाप पर निगरानी रखता था और सत्य के पालन की अपेक्षा करता था। यह वैदिक समाज में नैतिक अनुशासन की अवधारणा को धार्मिक बल प्रदान करता है।

इंद्र, युद्ध और वर्षा का स्वामी, सामरिक बल और प्रकृति की कृपा का प्रतिनिधि था। उसकी पूजा से शक्ति, सुरक्षा और कृषि के लिए अनुकूल वातावरण की कामना की जाती थी।

सोम, एक विशेष रस और देवता, यज्ञ में अमरत्व और शक्ति का स्रोत था।

इस प्रकार, हर देवता न केवल किसी शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था, बल्कि किसी सामाजिक, नैतिक या भौतिक आवश्यकता का भी प्रतीक बनता था। यह कार्य–विभाजन देवताओं की पूजा को आस्था से अधिक, सामाजिक जिम्मेदारी और आवश्यकता में बदल देता था।

पूजा–पद्धतियों में क्षेत्रीय और जनजातीय विविधता

वैदिक काल में भारतवर्ष एक विस्तृत भू–भाग था, जहाँ अलग–अलग जनजातियाँ और समुदाय विविध परिस्थितियों में रहते थे। यही विविधता धार्मिक उपासना की पद्धतियों में भी प्रकट होती है।

जिन क्षेत्रों में मानसून का आगमन अनियमित था, वहाँ इंद्र, पर्जन्य और वरुण जैसे जल–वर्षा संबंधी देवताओं की पूजा अधिक की जाती थी। वहीं, आग और यज्ञ प्रधान क्षेत्रों में अग्नि और सोम प्रमुख देवता थे।

जनजातीय पूजा–पद्धतियों में यह भी देखा गया कि एक ही देवता को अलग–अलग नामों और रूपों में पूजा गया। उदाहरणस्वरूप, कुछ समुदायों में रुद्र को विनाशकारी देवता माना गया, जबकि अन्य स्थानों पर उसे शिव के रूप में शांत और कल्याणकारी माना गया। यह लचीलापन दर्शाता है कि बहुदेववाद एक स्थिर रूढ़ि नहीं, बल्कि गतिशील और लचीली धार्मिक व्यवस्था थी, जो हर समूह की भावना और जरूरत के अनुसार ढल सकती थी।

इस धार्मिक विविधता ने समाज में टकराव की बजाय समावेश की भावना को जन्म दिया। हर समुदाय को ऐसा लगता था कि उनके अपने देवता हैं, और उनका स्थान धर्म–व्यवस्था में स्वीकृत है।

बहुदेववाद और सामाजिक संरचना का परस्पर संबंध

बहुदेववाद ने केवल पूजा की विविधता ही नहीं दी, बल्कि उसने वैदिक समाज को एक व्यवस्थित धार्मिक–सामाजिक ढाँचा भी प्रदान किया। देवताओं की विविधता और उनकी पूजा से जुड़े कर्म, समाज के अलग–अलग वर्गों और वर्णों की भूमिका को भी परिभाषित करते थे।

- ब्राह्मणों का कार्य यज्ञ करना और वैदिक मंत्रों का उच्चारण था– उनके प्रमुख देवता अग्नि, सोम, और बृहस्पति थे।
- क्षत्रिय, समाज के रक्षक और योद्धा वर्ग, इंद्र, रुद्र और मरुत की पूजा करते थे, जो शक्ति, वीरता और युद्ध से जुड़े थे।

- वैश्य, जो कृषि, व्यापार और पशुपालन से जुड़े थे, वे पर्जन्य, सविता और अश्विनीकुमारों को पूजते थे, जो जीवनदायिनी शक्तियों से संबंधित थे।
- शूद्रों के बारे में बहुत स्पष्ट विवरण वेदों में नहीं मिलता, परंतु बाद के ग्रंथों में यह देखा जाता है कि लोकदेवता या ग्राम–देवताओं की अवधारणाएँ उभरती हैं, जो सामाजिक समावेश की पुष्टि करती हैं।

यह विभाजन समाज को एक धार्मिक–आधारित कार्य संरचना देता था, जहाँ हर वर्ग का योगदान धर्म के माध्यम से वैध और सम्माननीय बना रहता था। यह बहुदेववाद की सबसे बड़ी सामाजिक उपलब्धि थी– विविधताओं को विरोध नहीं, बल्कि सह–अस्तित्व का आधार बनाना।

संक्षेप में, बहुदेववाद वैदिक धर्म की केवल एक धार्मिक विशेषता नहीं थी– यह समाज के भीतर व्यवस्था, उत्तरदायित्व और विविधता की स्वीकृति का एक गहरा दर्शन था। देवताओं का कार्य–विभाजन, पूजा की क्षेत्रीय विविधताएँ, और सामाजिक वर्गों के अनुसार उपासना की परंपराएँ, यह सब मिलकर एक ऐसी धार्मिक–सामाजिक प्रणाली बनाते हैं जो लचीली, समावेशी और यथार्थपरक है। इस प्रणाली ने न केवल धार्मिक बहुलता को स्थान दिया, बल्कि एक ऐसा ढाँचा तैयार किया जिसमें धर्म, समाज और प्रकृति तीनों के बीच संतुलन बना रहे। यही कारण है कि वैदिक बहुदेववाद, धार्मिक आस्था के साथ–साथ सामाजिक संगठन का भी एक प्रभावी मॉडल सिद्ध हुआ– ऐसा मॉडल जो बाद की हिंदू धार्मिक परंपराओं की नींव बन गया।

5. एकेश्वरवाद और बहुदेववाद में सामंजस्य

वैदिक धर्म की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक यह है कि उसमें एकेश्वरवाद और बहुदेववाद दोनों दृष्टिकोण न केवल सह–अस्तित्व में रहे, बल्कि एक–दूसरे को पूरक रूप में भी स्वीकार किया गया। इस सामंजस्य को आधुनिक धर्मशास्त्र की भाषा में 'हेनोटेइज्म' कहा जाता है, जिसका अर्थ है–किसी एक देवता को सर्वोच्च मानते हुए भी अन्य देवताओं के अस्तित्व और सम्मान को अस्वीकार न करना। ऋग्वेद की अनेक ऋचाएँ इस विचार को पुष्ट करती हैं। उदाहरणस्वरूप, एक सूक्त में अग्नि की स्तुति की जाती है, तो दूसरे में इंद्र को सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है, और तीसरे में वरुण को ब्रह्मांडीय नियमों का अधिपति माना जाता है। हर सूक्त में देवता को सर्वोच्च रूप में प्रस्तुत किया जाता है, किंतु अन्य देवताओं की अवहेलना नहीं की जाती। यह स्पष्ट करता है कि वैदिक ऋषियों के लिए ''सत्य'' एक था, परंतु उसकी अभिव्यक्ति अनेक रूपों में होती थी। इसी भावना को *''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति''* (सत्य एक है, ज्ञानीजन उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं) जैसे मंत्र साकार करते हैं।

वैदिक ग्रंथों में यह दृष्टिकोण बार–बार देखने को मिलता है कि एकता और विविधता एक–दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि वे एक ही अनुभव की दो परतें हैं। जहाँ ऋग्वेद में देवताओं की बहुलता के साथ–साथ उनके भीतर निहित एक अद्वितीय सत्ता की कल्पना की गई है, वहीं उपनिषदों में यह एकत्व और भी स्पष्ट हो जाता है। उपनिषद यह घोषित करते हैं कि ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' – यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड ही ब्रह्म है। यह विचार बहुदेववाद को एक व्यापक, अद्वैतवादी परिप्रेक्ष्य में समाहित कर देता है।

बाद की वैदिक संस्कृति, विशेषकर ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों में यह सामंजस्य और भी परिपक्व रूप लेता है। यहाँ धार्मिक कृत्य (कर्मकांड) और दार्शनिक चिंतन (ज्ञानकांड) का मिलन होता है। एक ओर यज्ञ, अग्निहोत्र और मंत्रों की विधियाँ हैं, तो दूसरी ओर ब्रह्म, आत्मा और मोक्ष की अमूर्त अवधारणाएँ भी। यह उभय दृष्टिकोण वैदिक धर्म की गहराई को दर्शाता है–जहाँ ईश्वर एक है, परंतु उसकी आराधना अनेक रूपों में की जा सकती है, जहाँ विविधता को अपनाया गया है, लेकिन उसके मूल में एकता की भावना सुरक्षित रखी गई है। इस तरह, वैदिक परंपरा ने न केवल धार्मिक बहुलता को आत्मसात किया, बल्कि उसे एक दार्शनिक एकता के सूत्र में भी पिरो दिया।

6. निष्कर्ष

वैदिक काल का धार्मिक दर्शन विविधता और एकता के बीच संतुलन का उदाहरण है। एक ओर इंद्र, अग्नि, वरुण जैसे देवताओं की पूजा बहुदेववाद को दर्शाती है, तो दूसरी ओर हिरण्यगर्भ और नासदीय सूक्त जैसे मंत्र एक परम सत्ता की ओर संकेत करते हैं। ऋग्वेद में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' जैसे कथन इस गहन

सोच को उजागर करते हैं कि सत्य एक है, पर उसकी अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हो सकती है। उपनिषदों में यह विचार और परिपक्व होता है, जहाँ ब्रह्म और आत्मा की एकता को अंतिम सत्य कहा गया है। वैदिक धर्म ने हेनोटेइज्म के रूप में एक देव को सर्वोच्च मानते हुए भी अन्य देवों को सम्मान दिया। यह लचीला दृष्टिकोण धार्मिक सहिष्णुता और समाज के सभी वर्गों को सम्मिलित करने की शक्ति रखता था। इसलिए, वैदिक धर्म केवल पूजा–पद्धति नहीं, बल्कि एक जीवन–दृष्टि थी जो आज भी भारतीय परंपरा की नींव है।

संदर्भ

- इब्राहिम, ए., खंबाली, के. एम., गजाली, ए., एवं जैनल आबिदीन, ए. (2020). चयनित मुस्लिम विद्वानों के दृष्टिकोण से हिंदू धर्म के एकेश्वरवादी लक्षणः एक तुलनात्मक समीक्षा। अफकार, 26(1), 245–276.
- जावदी, एस. (2014). हिंदू आस्थाएँ: एकेश्वरवाद से बहुदेववाद तक। जर्नल ऑफ आर्ट एंड सिविलाइजेशन ऑफ द ओरिएंट, 1(2), 6–11.
- चंद्रा, आर., एवं रंजन, एम. (2022). हिंदू दर्शन में विषय माडलिंग हेतु कृत्रिम बुद्धिमत्ताः उपनिषद और भगवद गीता के बीच विषयों की मैपिंग।
- इवानकोविक, एम. (2022). वैदिक देवता अश्विनों पर अल्फ्रेड हिलेब्रांड के सिद्धांत की हालिया शैक्षणिक विकृति का खुलासा।
- एंजेलिना, सी. (2013). वैदिक देवताओं की प्रकृति पर। सिनो–प्लैटोनिक पेपर्स, (241).
- न्यूटन, ई. (2021). पुरातन नियम में एकेश्वरवाद, हेनोटेइज्म और 'अराजकता युद्ध'। अप्रकाशित परास्नातक शोध प्रबंध, बी. एच. कैरोल थियोलॉजिकल इंस्टिट्यूट।
- मेधानंद, एस. (2022). पैनएंथेइज्म और बहुदेववाद की 'सबसे मूर्खतापूर्ण अंधविश्वास' की अवधारणाः वेदांत और हिंदू धर्म पर के.सी.एफ. क्रॉज की आलोचनात्मक समीक्षा। यूरोपीय दर्शन धर्म जर्नल, 14(2), 187–208.
- बोरकटकी–वर्मा, एस., एवं जाइलर, एक्स. (2022). डिजिटल तंत्रः एक नए शोध क्षेत्र की प्रस्तावना। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिंदू स्टडीज, 26(1), 1–10.